International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

ज्ञान और विश्वास

(प्रपत्र–सार)

डा० सन्ध्या श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शन शास्त्र
आर्य कन्या डिग्री कालेज,
इलाहाबाद ।

[सभी विद्याओं का मूल दर्शन है । भारत में दर्शन का लक्ष्य केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं वरन् जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करना भी है । भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के विचारकों में ज्ञान के अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद है । परम्परागत रूप से ज्ञान की परिभाषा एक यथोचित सत्य विश्वास के रूप में की गई है । कुछ विचारकों के अनुसार ज्ञान और विश्वास एक दूसरे से भिन्न है । जब हमें ज्ञान नहीं होता तब तक हम विश्वास का प्रयोग करते हैं । कहा जाता है कि सत्य को जानना है तो विश्वास और आस्था का त्याग करना होगा । वस्तुतः विश्वास के क्रियात्मक पक्ष से इन्कार नहीं किया जा सकता । कहा भी गया है – जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'' रामचरित मानस में कहा गया है –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।

याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।। रामचरित मानस[1/2]

दर्शन, धर्म और नैतिकता मानव की ज्ञान, भावना और कर्म नामक शक्तियों की अभिव्यंजनाएं हैं जिस प्रकार तीनों के अभाव में मानव का जीवन अपूर्ण है उसी प्रकार दर्शन, धर्म और कर्म में किसी एक के भी अभाव में पूर्ण ज्ञान का होना असम्भव है । ज्ञान और विश्वास एक दूसरे को पुष्ट करते हैं । ज्ञान के प्रकाश में ही भेद दृष्टि समाप्त होने पर 'सर्वं खलु इदं ब्रहम' की अनुभूति कर शांति प्राप्त करता है ।]

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

सभी विद्याओं का मूल दर्शन सत्य की खोज है जिसके द्वारा विवेक की आँखों से, अन्तर्दृष्टि से, परम सत्य का, परम चैतन्य का ज्ञान प्राप्त किया जाए, वही दर्शन है । भारतीय परम्परा में ऋषियों को शाश्वत सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन होता था उन्होंने उस सत्य का जिस प्रकार उद्घाटन किया, वह दर्शन है । पश्चिम में Philosophy ज्ञान के प्रति प्रेम है । पाइथैगोरस दार्शनिक की विशेषता बताते हुए कहता है कि जीवन एक खेल है जिसमें कुछ खिलाड़ी बनकर भाग लेते हैं, कुछ व्यापार के विचार से सर्वश्रेष्ठ दर्शक बनकर भाग लेते हैं, कुछ मूर्ख धन और यश के पीछे दौड़ते हैं, परन्तु दार्शनिक सत्य की खोज करता है । पाश्चात्य दर्शन ने जहाँ मुख्यतः बौद्धिक चिंतन को प्रधानता दी, वहाँ भारतीय दर्शन अपरोक्षानुभूति या आत्मसाक्षात्कार को प्रधानता देता है । भारत में दर्शन का लक्ष्य केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं वरन् जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करना भी है ।

अविकारी, अव्यभिचरित सत्य के अज्ञान के कारण ही संसार में सब प्रकार के दुःखों की सृष्टि हुई है । यदि मनुष्य वस्तुओं को उसी रूप में देखे जिस रूप में वे है तो वह आभासों के पीछे दौड़ना स्वयं बन्द कर देगा और महान् यथार्थ सत्ता को पा लेगा ।

ज्ञान अनन्त को जो देश काल की परिधि से भी परे है, पकड़ने की चेष्टा का ही दूसरा नाम है । ज्ञान का लक्षण यह है कि वह ऐसी चेतन अवस्था है जिसमें नैरन्तर्य हो, चेतना अहर्निश एक पल के लिए भी भंग न हो । ऐसा अखंड रूप जिसके आदि, मध्य और अन्त का कुछ पता न लगे ।

सांख्य–दार्शनिक पंचशिख ख्याति का प्रयोग ज्ञान के अर्थ में करते हैं । गौतम जैसे प्राचीन नैयायिक ज्ञान का प्रयोग प्रतीति के द्योतक 'संज्ञान' के अर्थ में करते हैं । कुछ नैयायिक ज्ञान को समस्त व्यवहारों का हेतु मानते हैं । भाट्ट–मीमांसक ज्ञान को आत्मा का धर्म मानते हैं । ज्ञान स्वप्रकाश है यह आत्मा को विषयी और ज्ञात वस्तुओं को विषय के रूप में अभिव्यक्त करता है ।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के विचारकों में ज्ञान के अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद है । प्लेटों के समय से ही ज्ञान की प्रकृति को लेकर दार्शनिकों में मतभेद रहा है । प्लेटो के अनुसार ज्ञान सद्गुण (धर्म) है, अज्ञान अधर्म है वास्तविक ज्ञानी कभी अधर्म नहीं कर सकता । ज्ञान परम आनन्द है । सुकरात के अनुसार, वही मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान है जिसे अपने अज्ञान का ज्ञान है । सुकरात लोगों को अज्ञान का ज्ञान करा कर स्वानुभूति की ओर अग्रसर करना चाहते थे ।

हम विभिन्न स्तरों पर ज्ञान के विभिन्न साधनों की सहायता लेते हैं । पश्चिम में बुद्धिवादी परम्परा प्लेटों और उससे भी पहले पाइथैगोरस से शुरू होकर हेगेल में अपनी चरम सीमा तक पहुँची है । इसके विपरीत इन्द्रिय संवेद्य ज्ञान बुद्धि से स्वतंत्र है और केवल बुद्धि

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

द्वारा अग्राहय है । इस मत की परम्परा बेकन और लॉक से मानी जाती है । इसका चरम रूप लॉक के उस कथन में है जो सारे ज्ञान का उद्भव इद्रियानुभव में मानता है । बुद्धिवादी निगमन (सामान्य से विशेष) और अनुभववादी आगमन–पद्धति को मानकर चलते हैं । इसकी चरम अवस्था इस मत से पहुँचती है कि शुद्ध बुद्धि द्वारा ग्राहय ज्ञान जैसी कोई चीज़ नहीं है ।

भारतीय दर्शन परम्परा में शुद्ध बुद्धि का अर्थ इन्द्रिय संवेदन से पूर्ण स्वतंत्र न होकर इच्छा, तृष्णा और वासना से रहित होना है । गणित जो पाश्चात्य परम्परा में शुद्ध बुद्धि ग्राहय ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है भारत में ज्ञान की संज्ञा से ही वंचित कर दिया जाता है । वह एन्द्रिय ज्ञान और विकल्पात्मक ज्ञान की अपूर्णता बताते हुए एक ऐसे ज्ञान की ओर संकेत करता है जो अतीन्द्रिय और निर्विकल्प होते हुए भी अनुभवगम्य है, इसे ही बौद्ध दर्शन प्रज्ञा कहता है । अद्वैत दर्शन का शुद्ध ज्ञान भी कुछ ऐसा ही है । काण्ट प्रज्ञा और बुद्धि में भेद करता है । प्रज्ञा बुद्धि के ऊपर है, बुद्धि जिन नियमों के आधार पर संवेदनों का समन्वय करती है, प्रज्ञा उन नियमों का समन्वय करती है । प्रज्ञा से तत्व मीमांसा के अतीन्द्रिय तत्वों का ज्ञान होता है ।

परम्परागत रूप से ज्ञान की परिभाषा एक यथोचित सत्य विश्वास के रूप में की गई है ज्ञान प्रमाणित सत्य विश्वास है । किसी प्रतिज्ञप्ति के ज्ञान की विशेषता यह है कि उसे सत्य होना चाहिए । सत्यता के अभाव में हम यह नहीं कह सकते कि हम उसे जानते हैं । ज्ञान में सत्यता समाविष्ट है । सत्यता क्या है? प्रतिज्ञप्ति सत्य है यदि वह तथ्य से संवाद रखती है तो कभी कहा गया कि सत्यता संसक्तता है, तो कभी सत्यता की कसौटी उपयोगिता मानी गई (सत्यता काम करती है) ।

कुछ विचारकों के अनुसार ज्ञान और विश्वास एक दूसरे से भिन्न हैं जब हमें ज्ञान नहीं होता तो हम विश्वास का प्रयोग करते हैं । ज्ञान का सत्य होना जरूरी है पर विश्वास अभिप्रायात्मक शब्द है, उसका सत्य होना जरूरी नहीं है । कोलिन रेडफोर्ड, ई.जे. लेमन, डेविड एन्नीज़ के अनुसार विश्वास के अभाव में भी ज्ञान संभव है । जैसे किसी व्यक्ति से इतिहास का कोई प्रश्न पूछा जाता है तो वह कहता है कि उसे इतिहास का कोई ज्ञान नहीं है किन्तु फिर भी वह कुछ प्रश्नों का उत्तर दे देता है, इसका अर्थ है कि उसे कुछ ज्ञान है किन्तु अविश्वास करता है कि उसे ज्ञान है ।

जॉन क्रुक विल्सन और प्रिचर्ड के अनुसार ज्ञान और विश्वास मूल प्रत्यय हैं वे एक दूसरे के द्वारा परिभाषित नहीं किये जा सकते, ऐसा करने पर चक्रक दोष उत्पन्न हो जाता है । जानना अन्य क्रियाओं से भिन्न है । विश्वास करना जानने का एक अंग है, परिभाषक विशेषता है । ''मैं 'प' को जानता हूँ'' में 'मैं 'प' में विश्वास करता हूँ' निहित है परन्तु 'प' में

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

विश्वास 'प' के सत्य होने की परिभाषक विशेषता नहीं है । 'प' सत्य हो सकता है चाहे कोई उसमें विश्वास करे या न करे ।

जानने की विषयनिष्ठ शर्त में सत्यता पर और विषयीनिष्ठ शर्त में विश्वास पर बल दिया गया है । यदि आप एक चीज़ में विश्वास करते हैं और वह सत्य है तो क्या यह कहा जा सकता है कि आप उसे जानते हैं । इस आधार पर ज्ञान सच्चा विश्वास है पर प्रतिज्ञप्ति सत्य हो सकती है । विश्वास भी हो सकता है फिर भी हो सकता है आप उसे सत्य न जानें । यदि आप विश्वास करते हैं कि मंगल ग्रह में चेतन प्राणी है और मान लीजिए कालांतर में पृथ्वी के अन्तरिक्ष यात्रियों के वहाँ उतर जाने के बाद आपका विश्वास सत्य निकलता है । जिस समय हमने मंगल में चेतन प्राणियों के होने की बात कही थी उस समय वह सत्य थी और उस समय उसमें आपका विश्वास भी था पर उस समय हम उसे सत्य नहीं जानते थे? इस प्रकार ''ज्ञान सत्य विश्वास है'' हर परिस्थिति में मानना पर्याप्त नहीं है ।

परम्परागत मत के अनुसार ज्ञान और विश्वास मानसिक शक्तियाँ हैं और प्रत्येक अपने प्रकार की अकेली है । जैसे प्रेम और मैत्री को एक दूसरे से परिभाषित नहीं किया जा सकता वैसे ही इनको भी नहीं । वे परस्पर समान इस बात में हैं कि एक आदमी जो कुछ जानता है उसे वह एक विधायक या निषेधक रूप में व्यक्त करता है और जो कुछ वह विश्वास करता है उसे भी इसी रूप में व्यक्त करता है । (वूज़ले)

जो दार्शनिक ज्ञान को एक विश्वास के रूप में परिभाषित करते हैं उसके अनुसार भी केवल सत्य विश्वास को ज्ञान नहीं कहा जा सकता । विश्वास का असत्य होना आत्म व्याघाती नहीं है इसके विपरीत ज्ञान को असत्य नहीं कहा जा सकता । विश्वास को त्यागना, संशोधित करना और परिवर्धित करना संभव है किन्तु ज्ञान के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता । कहा जाता है कि सत्य को जानना है तो विश्वासों और आस्था का त्याग करना होगा । अपने आपको स्वच्छ और बोझरहित बनाना होगा । सत्य के सम्बन्ध किसी धारणा को मत ढोयें यह धारणा सत्य और हमारे बीच अवरोध बन जाएगी ।

दूसरी ओर हमारे अपने और जगत्मूलक विश्वास ही हमारे लक्ष्यों को निश्चित करते हैं और इस प्रकार हमारी सफलता और असफलता के निर्णायक बन जाते हैं । हमारी स्वयं की सत्ता हमारे विश्वासों द्वारा रचित होती है और इस प्रकार जैसे हमारे विश्वास होते हैं वैसे ही हम बन जाएंगें । विश्वास मन को सबल बनाता है ।

विश्वास में सत्य का पक्ष अधूरा रहता है, अस्थायी भी होता है (एयर) इसमें अर्पण का भाव होता है । Faith तर्कणाहीन कार्य समर्पण है । Faith के संज्ञानात्मक और असंज्ञानात्मक दो अर्थ किए जाते हैं । आप्त या अधिकारी व्यक्तियों से सुनकर प्राप्त किया

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

ज्ञान जो मत, सम्प्रत्यय के समकक्ष है – संज्ञानात्मक अर्थ है और जो Faith ईश्वर तथा अन्य धार्मिक संत तथा सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा द्वारा उत्पन्न शान्ति से दृढ़ता प्राप्त करता है असंज्ञानात्मक अर्थ है । इसमें ज्ञान पक्ष, तार्किक पक्ष दुर्बल रहता है । Faith का सही अर्थ भरोसा, निष्ठा, भक्ति आस्था हो सकता है, जो ईश्वर बोध में सहायक है । जॉन हिक उन्हीं तथ्यात्मक वाक्यों को संज्ञानात्मक मानते हैं जिनका सत्यापन हो सके । आस्थापरक कुछ वाक्यों का सत्यापन एन्द्रिय प्रदत्तों के आधार पर जीवन में संभव नही इन वाक्यों का सत्यापन मरणोत्तर अनुभूति द्वारा संभव है ।

वस्तुतः विश्वास के क्रियात्मक पक्ष से इंकार नहीं किया जा सकता है । कहा भी गया है –

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत (मनः एव कारणं मनुष्याणां बंधमोक्षयोः)

रामचरित मानस में कहा गया है –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासंरूपिणौ

याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् । रामचरित मानस [1/2]

भारतीय परम्परा में धर्म और दर्शन को अलग–अलग करके नहीं देखा जाता । डा० राधाकृष्णन् के शब्दों में, ''इस देश में कोई भी धार्मिक आन्दोलन ऐसा नहीं हुआ जिसमें अपने समर्थन में दार्शनिक विषय का विकास भी साथ–साथ न किया हो'' धर्म का विशिष्ट लक्षण यह है कि वह सम्यक् जीवन् की प्रगति में सहायक होता है । (और यही वह अर्थ है जिसमें हम भारत में धर्म को दर्शन से एक कह सकते हैं ।)

दार्शनिक विचारों को आधार में उतारे बिना दर्शन केवल वाग्विलास मात्र है और दार्शनिक विचारों से परिपुष्ट हुए बिना धर्म अन्धविश्वास मात्र है । महर्षि याज्ञवल्क्य का उपदेश ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'' भारतीय दर्शन का मूल मंत्र है यह अनुभव श्रवण (श्रुति वाक्यों के श्रवण या पठन से) मनन (युक्ति युक्त बौद्धिक चिन्तन से) तथा निदिध्यासन (ध्यान और समाधि) से प्राप्य है ।

प्रायः यह कह कर पाश्चात्य और भारतीय का अंतर किया जाता है कि पाश्चात्य बौद्धिक है और भारत में दर्शन व्यावहारिक लक्ष्य मोक्ष के लिए है अन्ततः मोक्ष भी तत्व ज्ञान की अपेक्षा रखता है । भारतीय दर्शन जीवन प्रणाली है, जैन दर्शन का मूल मंत्र है ज्ञान के लिए जीवन नहीं, जीवन के लिए ज्ञान है । दर्शन, धर्म और नैतिकता मानव की ज्ञान, भावना और कर्म नामक शक्तियों की अभिव्यंजनाएं है जिस प्रकार तीनों के अभाव में मानव का

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

जीवन अपूर्ण है उसी प्रकार दर्शन, धर्म और कर्म में किसी एक के भी अभाव में पूर्ण ज्ञान का होना असम्भव है । ज्ञान और विश्वास एक दूसरे को पुष्ट करते हैं (बिनु जाने न होई परतीति) । सत्य अलौकिक व अतीन्द्रिय हो या सत्य परिभाषित हो, बुद्धि और इन्द्रियों के अनुभव पर आश्रित हो, सत्य का साक्षात्कार चिंतन और मनन द्वारा ही संभव है । ज्ञान के प्रकाश में ही भेद दृष्टि समाप्त होने पर सर्वं खलु इदं ब्रहम की अनुभूति कर जीव शांति प्राप्त करता है ।

सहायक एवं संदर्भ ग्रंथ सूची

दार्शनिक विश्लेषण परिचय	जे० हॉस्पर्स अनु. गोवर्धन भट्ट
पाश्चात्य दर्शन	चन्द्रधर शर्मा
ज्ञान–मीमांसा परिचय	ए. डी. वूज़ले
ज्ञान मीमांसा	दयाकृष्ण
भारतीय दर्शन	डा० राधाकृष्णन्
पाश्चात्य दर्शन	एच.एस. उपाध्याय
धर्म दर्शन परिचय	हरेन्द्र प्रताप सिन्हा
God and Reason	Ed. By L. Miller